

समाज दर्शन की पद्धतियाँ

सारांश

समाज दर्शन दर्शन की वह शाखा है जिसमें मानव समाज का अध्ययन एवं अनुसंधान किया जाता है, क्योंकि मानव अपने जीवन के लक्ष्य अर्थात् पुरुषार्थो—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति समाज के बिना नहीं कर सकता है। अतः दर्शन विषय में समाज का अध्ययन अति आवश्यक एवं महत्वपूर्ण हो जाता है, परन्तु स्वतंत्र विषय समाजशास्त्र में भी समाज का अध्ययन किया जाता है, परन्तु दोनों में दृष्टिकोण एवं विधियों को लेकर मूलभूत अन्तर है। अध्ययन क्षेत्र दोनों का एक समान है और लक्ष्य भी दोनों का एक समान अर्थात् एक अच्छे समाज का निर्माण करना है। इसकी पूर्ति हेतु समाजशास्त्र एवं समाज दर्शन ने अपनी-अपनी स्वतंत्र विधियों की खोज एवं स्थापना की है। प्रस्तुत शोध पत्र में समाजशास्त्र की विधियों की संक्षिप्त रूपरेखा बताते हुए, समाज दर्शन की सम्पूर्ण विधियों का वर्णन किया गया है।

मुख्य शब्द : समाजदर्शन, विधियाँ, मानव, जगत्, विकास, दृष्टिकोण, समाज।
प्रस्तावना

समाज एवं समाज दर्शन का अर्थ

समाज दर्शन दर्शनशास्त्र विषय की एक शाखा है, परन्तु समाजशास्त्र जैसे स्वतंत्र विषय में भी समाज का अध्ययन विस्तार से किया जाता है, जिसके लिये समाजशास्त्री तथ्यात्मक दृष्टिकोण एवं वैज्ञानिक विधियों अर्थात् निरीक्षण, वर्गीकरण एवं सत्यापन (Observation, Classification and Verification) का प्रयोग करके समाज क्या है ? समाज की कार्यप्रणाली क्या है ? मानव समाज में होने वाली विभिन्न घटनाओं का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है ? आदि प्रश्नों का समाधान करता है। वहीं समाज दार्शनिक भी समाज का विस्तृत रूप से अध्ययन करता है, परन्तु वह इस अध्ययन में दार्शनिक दृष्टिकोण एवं दार्शनिक विधियों अर्थात् आगमन, निगमन, आध्यात्मिक, विश्लेषणात्मक, संश्लेषणात्मक आदि की सहायता लेता है और समाज के विभिन्न मूल्यों एवं आदर्शों की खोज करके स्थापना करता है। समाज का अध्ययन समाजशास्त्र भी करता है और समाज दर्शन भी, तो अब प्रश्न उठता है कि समाज क्या है ? (What is Society) समाजशास्त्र की दृष्टि से समाज मानव के सामाजिक सम्बंधों का ताना-बाना है, मैकाइवर एण्ड पेज ने समाज का यह अर्थ अपनी पुस्तक 'सोसाइटी' में बताया है। परन्तु समाज दर्शन की दृष्टि से इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये हमें, सर्वप्रथम मनुष्य को जानना होगा कि मनुष्य क्या है ? इसके उत्तर में हमें यूनान के महान दार्शनिक अरस्तू द्वारा प्रतिपादित मानव की परिभाषा मिलती है कि, "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अर्थात् सामाजिकता मनुष्य का अनिवार्य स्वभाव है, जिसके कारण वह समाज से अलग नहीं रह सकता, यही कारण है कि अरस्तू मनुष्य की परिभाषा को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि, " यदि कोई मनुष्य समाज से अलग रहता है तो या तो वह देवता है या पशु, अर्थात् यदि कोई मनुष्य है तो वह समाज बनाकर ही रहेगा, समाज से अलग रहना उसका स्वभाव नहीं है। अब प्रश्न उठता है कि मानव का स्वभाव सामाजिक क्यों है ? इसके उत्तर में हमें पूरे ब्रह्माण्ड का अध्ययन करना पड़ता है। दार्शनिकों, विकासवादी दार्शनिकों एवं मानवशास्त्रियों के अध्ययन एवं अनुसंधान के आधार पर हमें पूरे ब्रह्माण्ड के चार जगत् मिलते हैं— जड़ जगत्, वनस्पति जगत्, पशु जगत् एवं मानव जगत् और इनके क्रमशः उत्पन्न स्वभाव। कहने का अर्थ यह है कि ब्रह्माण्ड में जब सर्वप्रथम जड़ जगत् उत्पन्न हुआ तो उसके स्वभाव—शान्ति एवं स्थिरता के साथ और विकास की प्रक्रिया में जब इस जड़ जगत् के बाद वनस्पति जगत् की उत्पत्ति हुई तो जड़ जगत् के स्वभाव शान्ति एवं स्थिरता वनस्पति जगत् में स्थानान्तरित हो जाते हैं, परन्तु इस नये जगत् वनस्पति जगत् में नये स्वभाव समूह, वृद्धि, विकास एवं संवेदना विकसित हो जाते हैं, विकास के इस क्रम में वनस्पति जगत् के बाद पशु जगत् का जन्म होता है, जिसमें पीछे के दोनों जगत्ों के स्वभाव रहते हैं, परन्तु इस जगत् में और नये



पिताम्बर दास जाटव

असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
दर्शनशास्त्र विभाग,
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी

स्वभावों का विकास होता है, जैसे क्षुधा (भूख लगने का स्वभाव), प्रजनन (सन्तानोत्पत्ति), पालन-पोषण, सुरक्षा, संघर्ष, सहयोग आदि। यह जगत् विकास क्रम में चार्ल्स डार्विन के दो सिद्धान्तों (अस्तित्व के लिये संघर्ष एवं सर्वोत्तम की विजय) को अपनाता हुआ मानव जगत् को विकसित करता है जिसमें पिछले तीन जगत् के स्वभाव के साथ-साथ नवीन स्वभाव जैसे विवेकशीलता, परस्पर निर्भरता, सम्बंधों की चेतना अथवा समूह में रहने वाले सदस्यों के प्रति एक विशेष प्रकार की मनोवैज्ञानिक दशा, परिवार की चेतना और जैसे-जैसे मानव जगत् का समूह बढ़ता गया तो मानव जगत् की आवश्यकतायें भी बढ़ती चली गयी, जिसकी पूर्ति के लिये मानव ने अनेक प्रकार की संस्थाओं का निर्माण किया। इस प्रकार विकास क्रम में समाज का एक व्यवस्थित प्रत्यय हमारे सामने आता है, जो निरन्तर परिवर्तनशील एवं प्रगतिशील अवस्था में हमारे सामने है।

परिवर्तनशीलता एवं प्रगतिशीलता के आधार पर ही हमें समाज दर्शन के अध्ययन एवं अनुसंधान की विभिन्न विधियाँ मिलती हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित है।

निरीक्षण पद्धति

समाज दर्शन की यह पद्धति हमें बताती है कि समाज दर्शन, दर्शन की एक वह शाखा है, जिसमें समाज के विभिन्न प्रकार के तथ्यों का निरीक्षण करके, उस निरीक्षण के आधार पर सामाजिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है। समाज दार्शनिक समाज की घटनाओं तथा सामाजिक व्यवस्था की विभिन्न सामाजिक संस्थाओं का अवलोकन करने के क्रम में, उसे समाज के विषय में जो भी सामग्रियाँ प्राप्त होती हैं, उन्हें वह वर्गों में विभाजित करके सामाजिक तथ्यों में विद्यमान सोच को समझने का प्रयास करता है। तत्पश्चात् विभिन्न वर्गों में विभाजित तथ्यों के बीच चिन्तन की समानता को प्रकाश में लाता है, जिसे दर्शन में सामान्यीकरण कहा जाता है और फिर वह समाज के सम्बन्ध में एक नवीन सिद्धान्त की स्थापना करता है। इस पद्धति को दर्शन में आगमन पद्धति के नाम से भी जाना जाता है। इस पद्धति के जन्मदाता यूनान के महान् दार्शनिक सुकरात एवं साफिस्ट्स हैं। लार्ड ब्राड्स ने 'दि अमेरिकन कॉमनवेल्थ' और 'दि माडर्न डेमोक्रेसी' नामक ग्रन्थों को लिखते समय इस निरीक्षण पद्धति का बहुत उपयोग किया था। कई देशों की शासन पद्धतियों का स्वयं निरीक्षण करके उन्होंने अपने मत का प्रतिपादन किया था। परन्तु निरीक्षण-पद्धति के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, तो उनमें कोई आवश्यक नहीं है कि वे पूर्णरूप से सत्य हों। जैसे भारतीय संस्कृति का अध्ययन अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भारत-भूमि पर आकर किया, फिर भी वे भारतीय संस्कृति की मौलिक एकता के दर्शन नहीं कर सके, क्योंकि उनके लिए भारतीय संस्कृति का स्वरूप अनेकता का स्वरूप ही रहा, जो सही नहीं है।

प्रत्ययात्मक पद्धति (Conceptual Method)

इस पद्धति के प्रतिपादक के रूप में यूनान के महान् दार्शनिक सॉक्रेटीज एवं प्लेटो का नाम लिया जाता है। इस पद्धति के अनुसार किसी वस्तु का ज्ञान उसके प्रत्ययों अथवा उसकी परिभाषा में निहित रहता है,

इसीलिये इस पद्धति को परिभाषात्मक पद्धति भी कहा जाता है। जैसे, यदि हमें मनुष्य के विषय में ज्ञान प्राप्त करना है तो हमें 'मनुष्य' के प्रत्यय या 'मनुष्य' की परिभाषा का विश्लेषण करना होगा। हम जानते हैं कि प्रत्येक मनुष्य में बौद्धिकता और पशुता के गुण पाए जाते हैं। इन दोनों गुणों को मिलाकर हम मनुष्य के सामान्य प्रत्यय का निर्माण करते हैं। इसी प्रकार मनुष्य की प्रजाति और उसके अवच्छेदक को संयुक्त कर उसकी परिभाषा निर्मित होती है। यही बात 'समाज' व समाज के आदर्शों के विषय में भी लागू होती है। समाज के विभिन्न प्रत्ययों के विश्लेषण से हमें समाज के आदर्शों के विषय में पर्याप्त ज्ञान हो सकता है। दर्शन में इसे प्रत्ययवाद कहा जाता है। यह पद्धति गणित और तर्कशास्त्र जैसे विशुद्ध विज्ञानों के लिए भले ही उपयुक्त हो पर यह दर्शन, विशेषकर समाज-दर्शन के लिए, तो बिल्कुल ही अनुपयुक्त है, क्योंकि दर्शन का सम्बन्ध वस्तु-जगत् के मूर्त अनुभवों से है। केवल प्रत्ययों के विश्लेषण से समाज की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकता।

ऐतिहासिक पद्धति (Historical Method)

इस पद्धति के मुख्य समर्थक लास्की एवं कार्ल मार्क्स हैं। यह पद्धति समाज के इतिहास का अध्ययन करती है। जैसे सामाजिक संस्थाएँ प्राचीन काल से चली आ रही हैं और इनके अनेक रूप विकसित होते हुए दिखाई दे रहे हैं। समाज दार्शनिक यह जानने का प्रयास करता है कि वह कौन सी ऐसी शक्ति है जिसके कारण सामाजिक संस्थाएँ विकास प्राप्त करती हैं, क्योंकि सामाजिक संस्थाओं का निर्माण नहीं होता अपितु वे धीरे-धीरे विकसित होती हैं, जो इतिहास की उपज हैं और उनके वास्तविक रूप को जानने के लिए हमें विकास की उन शक्तियों को भली-भाँति समझना आवश्यक है, जिन्होंने उन्हें यह रूप प्रदान किया है। अतीत और वर्तमान का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करके ही हम आगामी 'कल' की आदर्श संस्थाओं का निर्माण कर सकते हैं। हमारी परिपाटियाँ और हमारी संस्थाओं का 'निर्धारण' हमारे लिए हमारा अतीत ही करता है। कार्ल मार्क्स ने हेगेल के द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त को इतिहास पर ही सर्वप्रथम लागू किया है। उन्होंने यह माना है कि विश्व का विकास द्वन्द्वात्मक विधि से ही होता है। इस प्रकार कोई भी समाज दार्शनिक भूत और वर्तमान की गतिविधियों को देखने के बाद भविष्य के लिए कोई निर्णय प्रस्तुत करता है। अगले जीवन का आदर्श भूत और वर्तमान जीवन पर आधारित होता है, किन्तु सिजविक जैसे समाज दार्शनिक, के विचार में ऐतिहासिक पद्धति को कोई भी मान्यता प्राप्त नहीं है, क्योंकि सिजविक यह मानते हैं कि हर युग की अपनी समस्या होती है और उस समस्या का समाधान उस युग की अनुकूलता को देखकर ही हो सकता है।

तुलनात्मक पद्धति (Comparative Method)

इस पद्धति के मुख्य दार्शनिक यूनान के अरस्तू हैं। इस पद्धति के द्वारा हम समाज के आदर्शों, प्रकारों और उन्हें निर्धारित करने वाली शक्तियों का अध्ययन करते हैं। इस पद्धति में चयन, तुलना और परिहार पद्धतियाँ भी शामिल हैं। समाज दार्शनिक विभिन्न स्थानों पर होने वाली घटनाओं की तुलना करके देखता है कि किस कारण से

कौन सी घटना घटती है। जैसे वह विश्व में अलग-अलग समयों में अलग-अलग स्थानों पर होने वाली क्रान्तियों का अध्ययन करता है और यह समझता है कि किन-किन परिस्थितियों में क्रान्ति होती है। यदि वह वैसी परिस्थिति अपने समाज में देखता है तो समझ जाता है कि क्रान्ति होगी। तुलना द्वारा इस सामग्री को संगृहीत, क्रमबद्ध और वर्गीकृत करते हैं और पुनः एकीकरण तथा परिहार पद्धति द्वारा उसके परिणामों का सार निकालते हैं कि अमुक परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर क्रान्ति अवश्यम्भावी हो जाती है। इसी प्रकार विभिन्न देशों के प्रजातन्त्रात्मक शासनों का अध्ययन करके ऐसे सामान्य तथ्यों का निश्चय किया गया है जिनका अस्तित्व प्रजातन्त्र के लिए आवश्यक है। परन्तु इतना होते हुए भी उन देशों के निवासियों की प्रवृत्तियों की भिन्नता का भी ध्यान रखना चाहिए। जैसे ब्रिटेन, भारत, तथा अमेरिका तीनों जगह प्रजातान्त्रिक शासन है, परन्तु प्रवृत्ति की भिन्नता के कारण भारत का राष्ट्रपति केवल संवैधानिक है, ब्रिटेन की रानी वंश-परम्परा पर आधारित है तथा अमेरिका का राष्ट्रपति निर्वाचित अध्यक्ष होता है। इस पद्धति में चुनाव, तुलना तथा परिहार पद्धति के द्वारा समाज दार्शनिक विभिन्न सामाजिक घटनाओं में से अध्ययन के लिए कुछ घटनाओं का चुनाव करता है, फिर उनकी तुलना करता है, तब उनमें पाये जाने वाले दोषों को दूर करता है। इतना करने के बाद वह समाज के लिए सही विचार एवं सुझाव प्रस्तुत करता है, ताकि भविष्य में ऐसी घटनाओं को समय रहते रोका जा सके।

सादृश्य पद्धति (Method of Analogy)

इस पद्धति के प्रमुख प्रतिपादक विकासवादी दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सर हैं। स्पेन्सर के अनुसार समाज अथवा राज्य एवं मानव-प्राणी में जीवन-धारण, विस्तारक तथा नियामक क्रम होने के कारण साम्य है। दोनों का विकास समान रूप से होता है, मनुष्य एवं समाज दोनों का विकास जीवाणुओं के रूप में प्रारम्भ होता है। मनुष्य और समाज के विकास की रचनात्मक जटिलताएँ भी प्रायः समान होती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सादृश्य-पद्धति अच्छी एवं लाभदायक होती है, परन्तु बाह्य समानताएँ निश्चित निष्कर्ष की ओर ही ले जाती हैं। इससे चीजों के स्पष्ट होने की अपेक्षा, हमारे मन में भ्रम अधिक उत्पन्न हो सकते हैं। यह पद्धति बताती है कि प्राणी के शरीर और समाज के विकास में ऐसी सादृश्यता है, जिसमें दोनों के जीवन धारण करने, विस्तार करने तथा अन्य नियामकों में समानताएँ हैं। यह पद्धति समाज-दार्शनिकों को समाज की संभावनाओं की ओर ले जाती है, परन्तु किसी निश्चित निर्णय तक नहीं पहुँचाती है।

तर्क पद्धति (Logical Method)

दर्शन एक ऐसा विषय है, जिसमें तर्क का महत्वपूर्ण स्थान है और अधिकांश दार्शनिक परम्पराएँ तर्क पर ही आधारित हैं, बौद्ध एवं न्याय दर्शन तो शुद्ध रूप से बौद्धित तर्क पर ही अपने सिद्धान्त स्थापित करते हैं। इसके विपरीत विश्वास धर्म का आधार माना जाता है। दर्शन सत्य की खोज करता है, परन्तु तर्क के आभाव में सत्य की खोज अत्यन्त कठिन है। अतः ज्ञान प्राप्ति के

लिए तर्क आवश्यक है। ऐसा बहुत से दार्शनिक मानते हैं कि तर्क के बिना समाज-दर्शन की गतिविधि सही नहीं हो सकती, क्योंकि तर्क के आधार पर ही समाज के लिए किसी न्यायोचित सिद्धान्त की स्थापना हो सकती है। निगमन एवं आगमन तर्क के आधार पर ही समाज-दर्शन में महत्वपूर्ण निष्कर्षों पर पहुँच कर समाज के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सिद्धान्त अथवा नियमों की स्थापना की जाती है।

आध्यात्मिक पद्धति (Spiritual Method)

दर्शन की एक शाखा होने के कारण समाज दर्शन एक आदर्शमूलक दर्शन है क्योंकि यह समाज के आदर्शों को ध्यान में रखते हुए कोई विचार प्रस्तुत करता है। इसीलिए इसे नियामक अथवा मूल्यात्मक दर्शन भी कहा गया है। सामाजिक आदर्श का निर्धारण तथा पूर्ति किस प्रकार संभव है ? आदर्श निर्धारण में इन्द्रिय-जन्य ज्ञान सहायक हो सकता है अथवा अतीन्द्रिय ज्ञान ? आँख, नाक, कान, त्वचा, जिह्वा, से जो ज्ञान प्राप्त होते हैं, उनका अनुभव प्रायः सभी लोग करते हैं। किन्तु कुछ ज्ञान ऐसे भी होते हैं जो इन्द्रियों से परे होते हैं, सहज होते हैं। उनकी प्राप्ति से ज्ञाता और ज्ञेय में तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जो दार्शनिक आध्यात्मिकता में विश्वास करते हैं, वे अतीन्द्रिय ज्ञान को ही महत्व देते हैं और उनके अनुसार यही दर्शन का आधार है। जीव समान है, इसे आध्यात्मिकता से ही हम जान पाते हैं और फिर इसी के आधार पर हम समाज में समानता लाने का प्रयास करते हैं। समाज दार्शनिक को अपनी प्रणाली में दोहरी प्रक्रिया अपनानी होती है। एक ओर तो उसको अपने कार्य क्षेत्र में आने वाले तथ्यों और मूल्यों, सामाजिक विज्ञानों, विशेषतया समाजशास्त्र और इतिहास के तथ्यों और नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र और आध्यात्मशास्त्र के मूल्यों का व्यापक ज्ञान होना चाहिये और दूसरी ओर उसे एक ऐसे आध्यात्मिक बोध का विकास करना चाहिये जिससे कि वह सामाजिक तथ्यों और मूल्यों के मूल में छिपे गूढ़ अर्थों के साथ अपने को समायोजित कर सके। तथ्यों और मूल्यों के ज्ञान तथा आध्यात्मिक सम्बन्ध के विकास के साथ-साथ समाज दार्शनिक सत्य की खोज में भी आगे बढ़ता जायेगा।

समन्वय पद्धति (Method of Synthesis)

समाज दर्शन की यह पद्धति अध्यात्म एवं तर्क के समन्वित रूप को अपनाती है। किसी भी तथ्य की स्पष्टता के लिए तर्क आवश्यक है, किन्तु उसकी गहराई में जाने के लिए आध्यात्मिकता अनिवार्य है। अतः कुछ दार्शनिक यह मानते हैं कि समाज दार्शनिकों को न केवल अध्यात्म पर निर्भर रहना चाहिए और न केवल तर्क पर ही। समाज दर्शन के समुचित विकास के लिए अध्यात्म तथा तर्क दोनों ही आवश्यक हैं। वे ऐसा भी मानते हैं कि यद्यपि तर्क और अध्यात्म एक-दूसरे के सहायक बन जाते हैं। अतः समाज दर्शन की एक पद्धति यह भी हो जाती है जिसमें तर्क तथा अध्यात्म एक-दूसरे के पूरक के रूप में देखे जाते हैं। इसी को समाज दर्शन की समन्वय पद्धति कहा जाता है।

सुधारात्मक पद्धति (Reformative Method)

इस पद्धति के अन्तर्गत समाज की व्यवस्था में पैदा हो चुकी समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करके, उन सामाजिक समस्याओं को सुधारने का प्रयास किया जाता है। इस प्रयास के क्रम में समाज दार्शनिक प्राचीन, मध्यकालीन, एवं आधुनिक सभी प्रकार की सामाजिक व्यवस्थाओं का अध्ययन करने के बाद किसी काल की सामाजिक व्यवस्था एवं उसके मूल्यों को आधार बनाकर एवं वर्तमान देश-काल एवं परिस्थिति के आधार पर सामाजिक पुनर्निर्माण की नवीन व्यवस्था को हमारे सामने लाता है। इस पद्धति के द्वारा पुरानी व्यवस्था को ही सुधारकर समाज के लिए उपयोगी माना जाता है। जैसे महात्मा गांधी, डॉ० भगवानदास, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन आदि समाज दार्शनिकों ने भारतीय समाज के लिये भारत की प्राचीन वैदिक सामाजिक व्यवस्था को ही अति उत्तम बताया, परन्तु उसमें जो समस्याएँ पैदा हो गयी हैं, उनको दूर करना उपरोक्त दार्शनिकों ने अपने सामाजिक विचारों का लक्ष्य बनाया और एक नवीन सुधरे हुए रूप की सामाजिक व्यवस्था की वकालत की जिसका आधार प्राचीन वैदिक व्यवस्था ही हो, ऐसा इन उपरोक्त सभी दार्शनिकों के सामाजिक चिन्तन का प्रयास रहा। महात्मा गांधी जी ने प्राचीन वैदिक सामाजिक व्यवस्था एवं श्रीमद्भगवद्गीता की सामाजिक व्यवस्था को ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था में व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया। इसी प्रकार डॉ० भगवानदास जी ने भी वैदिक व्यवस्था को ही नवीन सामाजिक व्यवस्था का आधार बनाया और प्राचीन वैदिक वर्णाश्रम एवं पुरुषार्थ व्यवस्था में आधुनिक युग एवं मानवीय गुणों की दृष्टि से सुधार करके वर्णाश्रम एवं पुरुषार्थ व्यवस्था के नवीन रूप को समाज के सामने प्रस्तुत किया।

विध्वंशात्मक एवं रचनात्मक पद्धति (Deconstruction and Creative Method)

जब समाज की व्यवस्था में शोषण, अन्याय, अत्याचार एवं भेद-भाव, श्रेष्ठता-निम्नता के अमानवीय व्यवहार पैदा हो जाते हैं और लोग ऐसे व्यवहार से त्रस्त हो जाते हैं तो समाज में ऐसे दार्शनिकों का जन्म होता है जो ऐसे व्यवहार पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को विध्वंश करके नवीन सामाजिक व्यवस्था की रचना का प्रयास करते हैं। अतः इस पद्धति में समाज दार्शनिक असमानता एवं अन्याय पर आधारित तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था तथा उसके प्राचीन आधारों को ही उपरोक्त सामाजिक समस्याओं का कारण मानते हैं और तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का विध्वंश करके नवीन मानवीय कल्याण के मूल्यों की खोज करके एक नवीन समाज की रचना का प्रयास करते हैं। जैसे पाश्चात्य जगत् में शोषण, अन्याय, असमानता, भेद-भाव पर आधारित पूँजीवादी एवं सामन्तवादी व्यवस्था को कार्ल मार्क्स, लेनिन एवं ऐंजिल्स ने विध्वंशात्मक पद्धति अपनाकर अमानवीय पूँजीवादी व्यवस्था को पूरी तरह से नष्ट करने का प्रयास करके, एक नवीन मानवीय कल्याण के मूल्यों पर आधारित एक साम्यवादी व्यवस्था की रचना का प्रयास किया और काफी हद तक वे इसमें सफल भी हुए। इसी प्रकार भारतीय

सामाजिक व्यवस्था में शोषण, अन्याय, भेद-भाव के व्यावहारिक से त्रस्त होकर ज्योतिबा फूले, सन्त गाडगे, सन्त कबीर, बाबा साहेब डॉ० भीमराव अम्बेडकर आदि जैसे समाज दार्शनिकों ने तत्कालीन अमानवीय मूल्यों पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को विध्वंशात्मक पद्धति के द्वारा नष्ट करने एवं नवीन मानवीय लोकतान्त्रिक मूल्यों पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की रचना का प्रयास किया और काफी हद तक ऐसे समाज दार्शनिक सफल भी हुए, जिसका उदाहरण हमें भारतीय नवीन लोकतान्त्रिक व्यवस्था की रचना में देखने को मिलता है, जिसमें कानून बनाकर शोषण, अन्याय एवं भेद-भाव पर आधारित सामाजिक व्यवहारों को निरुद्ध किया गया है और ऐसे अमानवीय व्यवहार को अपराध मानकर उनके प्रति कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया है।

समाज दर्शन की उपरोक्त पद्धतियों को समझने के लिए समाज दर्शन के इतिहास का भी अवलोकन करना अनिवार्य है। जिसकी व्याख्या निम्नलिखित है

यूनान का समाज दर्शन

यूनानी दर्शन के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वहाँ समाजदर्शन का प्रारम्भ सोफिस्टों के विचारों में हुआ। यूनान के इन विचारकों ने मनुष्य के व्यवहार पर सामाजिक और आध्यात्मिक प्रतिक्रियाओं के प्रभाव का उल्लेख किया है। उन्होंने सामाजिक परिस्थिति में व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या करने की चेष्टा की है। उन्होंने व्यक्ति पर शिक्षा और समाजीकरण के प्रभाव का वर्णन किया है। सोफिस्ट वे अध्यापक थे जो प्राचीन यूनान में एक नगर से दूसरे नगर में घूमकर अध्यापन का कार्य करते थे। उनका समाजदर्शन व्यावहारवादी एवं मानवतावादी था। सोफिस्ट शिक्षा के माध्यम से युवकों को अच्छे नागरिक बनाना चाहते थे। वे गणतन्त्र के सच्चे समर्थक थे, यद्यपि उनके जनतन्त्र में पूँजीपतियों के अधिकार किसी प्रकार से कम नहीं थे। सोफिस्टों में प्रोटैगोरस एक मुख्य विचारक था, जिसके अनुसार, "मनुष्य ही सब वस्तुओं का मापदण्ड है"। इसके अलावा कहीं भी सत्य को मापने का कोई भी निरपेक्ष मापदण्ड नहीं है। समस्त सत्य, उचित और अनुचित मानव प्रत्यय है। सोफिस्ट विचारक प्राचीन परम्पराओं और प्रथाओं की आलोचना करते थे। सोफिस्टों की आलोचनाओं का यूनानी समाज पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा।

सुकुरात का समाजदर्शन सोफिस्टों से भिन्न था। वह ज्ञान के प्रेम का समर्थक था और ज्ञान की पहचान एवं ज्ञान का व्यावहारिक रूप विनम्रता को मानता था। सुकुरात ने अपने नैतिक जीवन में ज्ञान को इतना अधिक महत्व दिया कि उन्होंने सदगुण को ज्ञान और दुर्गुण को अज्ञान कहा। उनके अनुसार हमारे समस्त अनुचित कार्य अज्ञान के कारण होते हैं, कोई भी व्यक्ति जान-बूझकर अनुचित कार्य नहीं करता। विवेक का मानव जीवन में सर्वोच्च स्थान है। विवेकयुक्त व्यक्तियों के द्वारा ही आदर्श सामाजिक व्यवस्था का निर्माण हो सकता है। प्लेटो सुकुरात के विचारों से अत्यधिक प्रभावित थे। प्लेटो ने मनुष्य की सीखने की प्रवृत्ति को उसकी विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था का मूल आधार बतलाया। मनुष्य शिक्षा प्राप्त करता है और इसीलिए मनुष्य को शिक्षित किया जा

सकता है। इसी से समाज में उसके व्यवहार में परिवर्तन की सम्भावनायें उत्पन्न होती हैं। मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्तियाँ शिक्षा से अत्यधिक प्रभावित होती हैं। जैसी शिक्षा उसे मिलती है, उसी के अनुसार उसका व्यक्तित्व बनता है और वह सामाजिक परिस्थितियों में वैसा ही व्यवहार करता है। इस प्रकार प्लेटों के अनुसार समाज में वांछित परिवर्तन करने के लिए शिक्षा व्यवस्था की उन्नति की जानी चाहिये। अपने प्रसिद्ध संवाद रीपब्लिक में प्लेटो ने आदर्श राज्य की रूपरेखा प्रस्तुत की और उसको चलाने के लिए, उन्होंने शिक्षा की आदर्श व्यवस्था बताई। प्लेटो के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार उस सामाजिक व्यवस्था का परिणाम होता है, जिसमें वह विकसित होता है। इस प्रकार प्लेटो के समाजदर्शन में व्यक्ति की तुलना में समाज को अत्यधिक महत्व दिया गया है। प्लेटो के प्रमुख शिष्य अरस्तू ने मनुष्य के सामाजिक व्यवहार के विषय में प्लेटो से भिन्न विचार प्रकट किये। जहाँ प्लेटो ने मानव व्यवहार के परिवर्तन के लिए शिक्षा को बहुत अधिक प्रभावशाली माना है। वहाँ अरस्तू के अनुसार शिक्षा से मनुष्य की प्रकृति में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। मनुष्य की जन्मजात मूल प्रवृत्तियाँ ही उसके सामाजिक व्यवहार को निर्धारित करती हैं। समाज मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों का परिणाम है, जो कि अपरिवर्तनीय हैं। आधुनिक विचारक मानव की परिवर्तनशीलता के विषय में प्लेटो अथवा अरस्तू किसी के विचारों को पूरी तरह नहीं मानते यद्यपि इससे इनके विचारों का ऐतिहासिक महत्व कम नहीं होता। अरस्तू के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक संस्थाओं के द्वारा ही उसका विकास होता है। आदर्श राज्य के सदस्य के रूप में वह अच्छा नागरिक बनता है। न्याय के अभाव में शुभ जीवन सम्भव नहीं है। यह न्याय राज्य के द्वारा ही मिलता है। अतः कहा जा सकता है कि मनुष्य का नैतिक जीवन राजनैतिक जीवन के आधीन है। राज्य ही सर्वश्रेष्ठ समुदाय है जो कि सभी नागरिकों का सर्वोच्च हित साधन करता है। राज्य से बाहर मनुष्यों का जीवन पशुओं से अधिक नहीं होता। राज्य ही व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार को नियन्त्रित करता है। जहाँ एक ओर वह शान्ति और सुरक्षा की स्थापना करता है, वहाँ दूसरी ओर जनता में नैतिक जीवन का विकास करता है।

इस प्रकार यूनानी दार्शनिक सुकरात, प्लेटो और अरस्तू ने पाश्चात्य समाजदर्शन में आदर्शवादी परम्परा उत्पन्न की जिसका समाजदर्शन के क्षेत्र में अति महत्वपूर्ण स्थान है।

समाज दर्शन के विभिन्न रूप

आधुनिक पाश्चात्य समाजदर्शन

आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में अनेक समाज दार्शनिकों ने समाज के सम्बन्ध में अपनी-अपनी दृष्टि से महत्वपूर्ण विचार प्रकट किये हैं। उनमें से महत्वपूर्ण समाज दार्शनिकों के विचार निम्नलिखित हैं :-

जे0 एस0 मैकेन्जी के विचार

आधुनिक समाज दार्शनिक जे0 एस0 मैकेन्जी ने अपनी पुस्तक 'समाज दर्शन की रूपरेखा' में समाजदर्शन के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए, दार्शनिक प्रणाली से सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया।

उसने सामाजिक व्यवस्था के दार्शनिक आधारों की व्याख्या की। उसने विश्व में मानव के स्थान का विवेचन किया और मनुष्य की परिभाषा करते हुये, मानव जीवन के तीन मुख्य पहलुओं की ओर संकेत किया। उसने मनुष्य की सामाजिक प्रकृति की व्याख्या की और इस सामाजिक प्रकृति को ही मानव समाज का आधार बतलाया। मैकेन्जी ने मानव की प्रकृति, मानव समुदाय एवं साहचर्य के प्रकारों के आधार पर सामाजिक व्यवस्था के आधारों की विवेचना की। देश की सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था की विवेचना करते हुए उसने परिवार, शैक्षिक संस्थाओं, औद्योगिक संस्थाओं, राज्य, न्याय और सामाजिक आदर्शों का विवेचन किया। विश्व व्यवस्था के विवेचन में उसने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, मानव जीवन में धर्म के स्थान, सामाजिक जीवन में संस्कृति का महत्व और मानव जीवन के लक्ष्य के रूप में संस्कृति की चर्चा की। मैकेन्जी के अनुसार समाजदर्शन का लक्ष्य सामाजिक एकता के नियम के अनुसार समाज की व्याख्या करना है और उसमें सामाजिक जीवन के अर्थ का निश्चय करना है। इसमें समाजदर्शन सामाजिक विज्ञानों की सहायता लेता है। मनुष्यों के सामाजिक व्यवहार पर समाजदर्शन का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, क्योंकि उससे हमें कार्य करने के कुछ सामान्य सिद्धान्त मिलते हैं। मैकेन्जी का समाजदर्शन उसके आध्यात्मिक और नैतिक विचारों से प्रभावित है।

मोरिस गिन्सवर्ग का समाजदर्शन

समकालीन पाश्चात्य दर्शन में मोरिस गिन्सवर्ग के समाज दार्शनिक विचारों का महत्वपूर्ण योगदान है। गिन्सवर्ग के अनुसार समाजदर्शन का लक्ष्य मानव व्यवहार के सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत करना है। परन्तु ये सामान्य सिद्धान्त प्रकट करते समय हमें सामाजिक तथ्यों पर नजर रखनी चाहिए। अर्थात् समाज दर्शन अनुभवादी पद्धति पर आधारित होना चाहिये। उसमें सामाजिक विज्ञानों के निष्कर्षों की सहायता लेना आवश्यक है। समाज दार्शनिक इन निष्कर्षों की समीक्षात्मक विवेचना करता है और दूसरी ओर इनके समन्वय से एक पूर्ण व्यवस्था प्रकट करने का प्रयास करता है। इस प्रकार समाज दार्शनिक एक ओर समीक्षात्मक और दूसरी ओर रचनात्मक कार्य करता है। समीक्षात्मक कार्य में वह सामाजिक विज्ञानों की मान्यताओं और विधियों की समीक्षा करता है। रचनात्मक पहलू में वह सामाजिक आदर्श की विवेचना करता है और विभिन्न सामाजिक आदर्शों के आधार पर आदर्श समाज का रूप प्रकट करने का प्रयास करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक विज्ञानों और समाजदर्शन में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज की मौलिक समस्याओं को समझने के लिए इन दोनों के सहयोग की आवश्यकता है। जहाँ एक ओर समाज विज्ञान हमें सामाजिक तथ्यों को समझने में सहायता देते हैं, वहाँ दूसरी ओर सामाजिक मूल्यों को समझने के लिए समाजदर्शन की सहायता अनिवार्य है। इस प्रकार सामाजिक विज्ञानों और समाजदर्शन दोनों के सहयोग से ही सामाजिक समस्याओं को समझा जा सकता है। एक दूसरे से पृथक कार्य करते हुये दोनों ही अपूर्ण रहते हैं, इस प्रकार ये दोनों ही परस्पर पूरक हैं।

पी० ए० सोरोकिन का समाज दर्शन

समकालीन पाश्चात्य दर्शन में सोरोकिन एक ऐसे समाज दार्शनिक है, जिन्होंने सामाजिक घटनाओं पर समाज दार्शनिकों के विचारों का महत्व दिखलाया है। दूसरी ओर समाज दर्शन सामाजिक विज्ञानों के निष्कर्षों की अवहेलना नहीं कर सकता। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समाज दर्शन को समाजशास्त्रीय अध्ययनों पर आधारित होना चाहिये। समाजशास्त्र और समाजदर्शन के सम्बन्ध को लेकर गिंसवर्ग एवं सोरोकिन के विचारों में कुछ अन्तर दिखलाई पड़ता है। गिंसवर्ग के अनुसार समाजदर्शन सामाजिक विज्ञानों की विधियों के तर्क का निश्चय करता है। इस प्रकार समाजदर्शन सामाजिक विज्ञानों की समीक्षा करता है। दूसरी ओर सोरोकिन के अनुसार समाजदर्शन समाजशास्त्र के आधीन है और समाजशास्त्र ही समाजदर्शन की मान्यताओं की प्रमाणिकता की जांच करता है। इस प्रकार समाजशास्त्र और समाजदर्शन के परस्पर सम्बन्ध ने समाजशास्त्र को अधिक महत्व दिया। सामाजिक मूल्यों और सामाजिक तथ्यों दोनों की समीक्षा और विवेचना का कार्य करने के कारण समाजदर्शन की स्थिति सामाजिक विज्ञानों से अधिक होती है। इस सम्बन्ध में गिंसवर्ग के विचार, सोरोकिन की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण दिखाई देते हैं।

बर्ट्रेंड रसेल का समाज दर्शन

समकालीन पाश्चात्य समाजदर्शन की श्रृंखला में बर्ट्रेंड रसेल के समाज दार्शनिक विचारों की विवेचना करना भी अतिआवश्यक है, क्योंकि आधुनिक समाज दार्शनिकों में संभवतः रसेल के विचारों ने ही सबसे अधिक व्यापक-प्रभाव डाला है। उनके अनुसार हमें एक ऐसे समाज की रचना करनी चाहिये, जिसमें मनुष्य की रचनात्मक प्रवृत्तियों को, मानव प्रेम और सहानुभूति को अधिक से अधिक विकसित होने का अवसर मिले। मानव जीवन स्वभाविक प्रवृत्तियों और सामान्य प्रयोजनों से परिचालित होता है। परिवार, विवाह, शिक्षा, राज्य इत्यादि सामाजिक और राजनैतिक संस्थाएँ, इस तरह की होनी चाहियें कि वे मनुष्य के स्वभाविक विकास को किसी भी तरह से कुँठित न कर सकें, अपितु उसे अधिक से अधिक स्वतन्त्रता देते हुये, अधिक से अधिक विकास का अवसर दें। इसी तरह की संस्थाएँ ऐसे नर-नारियों का निर्माण कर सकती हैं, जो संसार को भावी महायुद्ध से बचा सकते हैं। रसेल ने अपने ग्रन्थों में वर्तमान परिवार, विवाह, शिक्षा और राज्य की संस्थाओं का सूक्ष्म विश्लेषण करके यह दिखलाया है कि वे जिन प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट करने के लिए बनाई गई थी, उनको कहां तक सन्तुष्ट कर रही है। रसेल ने इन संस्थाओं को एक ऐसा रूप भी देने का प्रयास किया है, जिनमें स्त्री-पुरुष का अधिकतम स्वाभाविक विकास हो सके।

रसेल अपने समाज दार्शनिक विचारों में आगे बताते हैं कि हमारी सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक एवं राजनैतिक संस्थाएँ सत्ता अथवा शक्ति पर नहीं, अपितु परस्पर सहयोग पर आधारित होनी चाहियें। आधुनिक काल की नवीन परिस्थितियों के अनुसार इन संस्थाओं के प्राचीन रूप में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। ऐसा न करने से ये मानव विकास में बाधक ही सिद्ध होती हैं और

सृष्टि का भी सर्वकालिक नियम है—परिवर्तन, इसलिये भी परिवर्तन आवश्यक है। परिवर्तन न करने पर मनुष्य-मनुष्य में एकता बढ़ने के स्थान पर विरोध बढ़ता जाता है। रसेल समाज की सबसे महत्वपूर्ण संस्था विवाह को स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम पर आधारित करना चाहते हैं और दूसरी महत्वपूर्ण संस्था परिवार में विभिन्न सदस्यों में परस्पर सहयोग को अधिक से अधिक बढ़ाने की वकालत करते हैं। इनके अलावा आर्थिक संस्थाओं में वे पूँजीवाद की आलोचना करते हुये भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का पूरी तरह से अपहरण उचित नहीं मानते और राजनैतिक संस्थाओं में वे जनतन्त्र के समर्थक हैं। रसेल युद्ध के घोर विरोधी हैं और मानव समाज को युद्ध से दूर रखने के लिए, आधुनिक सभ्यता और संस्कृति में ऐसे परिवर्तन आवश्यक मानते हैं, जिनके द्वारा युद्ध को उत्पन्न करने वाली प्रवृत्तियाँ, शान्ति की पोषक प्रवृत्तियाँ बन जायें। वे धर्म को व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित करना चाहते हैं। हमें ऐसे शैक्षिक परिवेश का निर्माण करना है, जिसमें बालक की प्रवृत्तियों का स्वतंत्र विकास हो और इसके लिए अति आवश्यक है कि शिक्षा को राज्य के अधीन नहीं होना चाहिये क्योंकि शिक्षा राज्य के अधीन होने से शैक्षिक लक्ष्य राजनैतिक लक्ष्यों के अधीन हो जाते हैं। विश्वशान्ति के उपायों के बारे में संकेत करते हुए, रसेल ने यह दिखाया है कि लीग ऑफ नेशन्स अथवा संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाओं के नियमों से नहीं, अपितु स्त्री पुरुष की प्रेम और सहानुभूति की प्रवृत्तियों से ही विश्व शान्ति की स्थापना की जा सकती है। इस प्रकार रसेल मानव जीवन को विवेक से अधिक मूल प्रवृत्तियों का रूपान्तरण जरूरी समझते हैं। भारतीय समकालीन दार्शनिक श्री अरविन्द, गांधी तथा अन्य समकालीन विचारकों के साथ-साथ रसेल ने भी मानव प्रकृति के रूपांतरण की संभावना पर जोर दिया है और इस दिशा में शिक्षा के महत्व की ओर संकेत किया है।

वैदिक समाज दर्शन

भारतीय चिन्तन परम्परा में समाजदर्शन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है, जबकि समाजशास्त्र का अध्ययन वर्तमान शताब्दी में ही प्रारम्भ हुआ है। भारतीय समाजदर्शन का आरम्भ प्राचीन मूल निवासियों एवं आर्य लोगों के समाजदर्शन से प्रारम्भ होता है, जिसका विवरण वेद ग्रन्थों में जगह-जगह मिलता है। वेदों ने मानव समाज को मनुष्य की प्रवृत्ति के अनुसार चार वर्णों में विभाजित किया—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ये चारों वर्ण परस्पर पूरक के रूप में समाज के सर्वांगीण विकास के लिए कार्य करते थे। मानव के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन को वेदों ने विकासोन्मुख दृष्टि से देखा है। विकास की प्रक्रिया में व्यक्ति और समाज दोनों ही विभिन्न स्थितियों से गुजरते हैं, दोनों का ही लक्ष्य सर्वांगीण विकास है। मानव के जीवन में यह सर्वांगीण विकास ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—इन चारों आश्रमों में क्रमशः विकास से प्राप्त होता है। समाज में सर्वांगीण विकास चारों वर्णों के अपने-अपने वर्ण धर्म के अनुसार कार्य करने से प्राप्त होता है। आर्यों के समाजदर्शन में स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष स्थान दिया गया था। ऋग्वैदिक काल में पुत्र पुत्रियों की शिक्षा दीक्षा

एक ही प्रकार से की जाती थी। उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति पुरुष के समान नहीं रही, यद्यपि उस समय भी अनेक विदुषी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार वैदिक समाज दर्शन के अनुसार समाज का जीवन वर्णव्यवस्था से और मानव का जीवन आश्रम व्यवस्था से निर्धारित होता था। इस व्यवस्था में विवाह की संस्था को अत्यधिक महत्व दिया गया था और यह माना जाता था कि पत्नि के सहयोग के बिना पुरुष कोई भी अनुष्ठान नहीं कर सकता। विवाह को धार्मिक संस्कार माना जाता था। राजनैतिक कार्य राजा लोग करते थे, परन्तु इन राजाओं पर जनमत का पर्याप्त नियन्त्रण था और यही कारण है कि वे जनता के विश्वासपात्र बने रहने के लिए प्रयास करते थे। इस प्रकार भारतीय वैदिक समाज दर्शन में राजा एवं प्रजा के आपसी सम्बन्ध अत्यधिक घनिष्ठ थे और दोनों ही परस्पर सहयोग से समाज के विकास के लिए कार्य करते थे।

धर्मशास्त्रों का समाज दर्शन

उपरोक्त विवेचन के अलावा प्राचीन भारतीय समाज दर्शन में मनु के धर्मशास्त्र में भारतीय समाज दर्शन की विवेचना मिलती है, परन्तु मनु का समाज दर्शन कहाँ तक कितना समीचीन है, इसका फैसला पाठक पर छोड़ दिया जाता है। मनु अपने समाज दर्शन में राजा को शासन करने का दैवीय अधिकार देते हैं। मनु के अनुसार समाज हित के लिए ही स्त्री एवं पुरुषों को राजा की अधीनता में रहना चाहिये। जिसके लिये राज्य की स्थापना की गयी है। मनु मानव प्रकृति को मूल रूप से नैतिक नहीं मानते हैं और इसलिए दण्ड का भय दिखाकर समाज में व्यवस्था बनाये रखने का समर्थन करते हैं। मनु ने अपने धर्मशास्त्र में सभी वर्णों को समान अधिकार नहीं दिये हैं। उन्होंने स्त्री एवं पुरुष को परिवार की संस्था की गाड़ी के दो पहिये माना है। मनु स्मृति में राजनीति, धर्म-नीति, समाज-नीति और अर्थनीतियों पर प्रकाश डाला है। मनु के समय में आर्यावर्त विभिन्न जनपदों में बँटा हुआ था, यद्यपि राजनैतिक दृष्टि से वह एक ही था। राजा के आधीन समुदाय के सरदार सामन्त कहलाते थे, वे राजा को सहायता देते थे और उसकी आज्ञा का पालन किया करते थे। तत्कालीन समाज में दो प्रकार के लोग थे—एक आर्य एवं दूसरे अनार्य। आर्य लोग वर्णाश्रम व्यवस्था को मानते थे और अनार्य समतावादी व्यवस्था का पालन करते थे। इस समाज में स्त्रियों की स्थिति पुरुष के समान नहीं थी। उनको वेद पढ़ने की अनुमति नहीं थी और शूद्रों की सामाजिक स्थिति भी अन्य वर्णों से नीची थी। समाज में ऐसी उंची-नीच क्योँ और कैसे उत्पन्न हुई, इसकी जाँच-पड़ताल के लिए मनु के धर्मशास्त्र मनुस्मृति को पढ़ना आवश्यक है। मनु के पश्चात् कौटिल्य के धर्मशास्त्र में समाज के विभिन्न पहलुओं के विषय में विस्तृत विवेचना मिलती है।

इस प्रकार धर्मशास्त्रों के समाजदर्शन में यथार्थ को आदर्श की ओर ले जाने, उससे जोड़ने तथा आदर्श और यथार्थ में एकता स्थापित करने के लक्ष्य को विशेष महत्त्व दिया गया है। यह समाज-दर्शन न तो समाज एवं व्यक्ति को पूर्ण एवं स्वतंत्र मानकर उसको अपनी इच्छा पर छोड़ देता है और न उसे हमेशा अपूर्ण मानता है। यह

समाज-दर्शन मानव तथा मानव समाज को अपूर्णता से पूर्णता की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, भोग से अपवर्ग की ओर, पवृत्ति से निवृत्ति की ओर ले जाने का मार्ग प्रशस्त करता है। जिससे यथार्थ की हानि नहीं होती। बल्कि वह परिमार्जित, परिशोधन एवं विकसित होकर आदर्श की ओर अग्रसर होता हुआ, आदर्श के साथ एकीभूत हो जाता है। मानव में मानवता या पशु शरीर में देवत्व की प्राप्ति ही इस समन्वय का अन्तिम लक्ष्य है। इसके अलावा धर्मशास्त्रों में सामाजिक-व्यवस्था, सामाजिक संस्थाएँ, व्यक्ति एवं समाज का सम्बन्ध आदि उसके व्यापक दार्शनिक सिद्धान्त अथवा पूर्वमान्यताओं पर आधारित एवं प्रतिष्ठित है।

महाकाव्यों का समाज दर्शन

उपरोक्त धर्मशास्त्रों के अलावा रामायण और महाभारत में भी अनेक स्थानों पर समाज दार्शनिक विचार मिलते हैं। जिनमें परिवार के विभिन्न सदस्यों के कर्तव्य, समाज में विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्ध, राजा और प्रजा के सम्बन्ध, शिक्षा व्यवस्था, आर्थिक संस्थाओं और औद्योगिक संस्थाओं आदि के विषय में महत्त्वपूर्ण विचार मिलते हैं।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य समाजदर्शन का अर्थ एवं समाज दर्शन की विभिन्न प्रविधियों से अवगत कराना है, ताकि शोधार्थी समाज दर्शन के क्षेत्र में अध्ययन एवं अनुसंधान करते समय इन मौलिक बातों को ध्यान में रखते हुए, अपने शोध कार्य में मौलिकता ला सके और आधुनिक शोध कार्य में मौलिकता को बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। अतः प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य समाज दर्शन के शोध कार्य के क्षेत्र में मौलिकता लाना है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र के विवेचन से स्पष्ट होता है कि दर्शन की एक शाखा होते हुए भी समाज दर्शन ने अपने अध्ययन एवं अनुसंधान के हेतु किस प्रकार से अनेक महत्त्वपूर्ण विधियों को जन्म दिया, जिनके बिना हम मानव एवं उसके समाज की संरचना को ठीक प्रकार से नहीं समझ सकते। अतः इन विधियों के प्रयोग से समाज दर्शन के क्षेत्र में एक उत्तम शोध कार्य सम्पन्न किया जा सकता है और वर्तमान समय में जिस तरह से विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोध कार्य एवं कोर्स वर्क सम्पन्न किये जा रहे हैं, उनके लिये ऐसे शोध पत्र आदर्श का काम करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ० पिताम्बरदास, सामाजिक पुनर्निर्माण में डॉ० भगवानदास के धर्म-दान का योगदान, विश्वज्ञान अध्ययन संस्थान एवं अंकित प्रकाशन, मडॉव, रोहनिया, वाराणसी, वर्ष-2014
2. प्रो० अशोक कुमार वर्मा, प्रारम्भिक समाज एवं राजनीति दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, वर्ष-2006
3. जगदीश सहाय श्रीवास्तव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष-2002
4. डॉ० शिवभानु सिंह, समाज दर्शन का सर्वेक्षण, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, वर्ष-2001

5. डॉ० रामनाथ शर्मा, समाज दर्शन, केदारनाथ रामनाथ एण्ड क०, मेरठ, वर्ष—1998
6. डॉ० बी० एन० सिन्हा, समाज दर्शन—सामाजिक व राजनीतिक दर्शन, सपना अशोक प्रकाशन, रामनगर, वाराणसी।
7. राहुल सांकृत्यायन, मानव—समाज, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष—2012
8. जे० एस० मेकेन्जी, समाज—दर्शन की रूपरेखा, रूपान्तरकार, डॉ० अजीत कुमार सिन्हा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, वर्ष—1962
9. संगम लाल पाण्डेय, समाज दर्शन की एक प्रणाली, इलाहाबाद।
10. डॉ० हृदय नारायण मिश्र, समाज दर्शन—सैद्धांतिक एवं समस्यात्मक विवेचन, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष—2009
11. डॉ० पिताम्बरदास, डॉ० भीमराव अम्बेडकर का मानववाद, कला प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष—2009